वेदांग निरूक्त में शिक्षा चिंतन

जयश्री दवे

सर संक्षेपः

प्राचीन भारतीय संस्कृत के उद्गम एवं विकास में भारतीय ज्ञान-परंपरा का विशेष योगदान रहा है। उसमे वैदिक ऋषिओं के ज्ञान के परिपाकस्वरूप वेदग्रंथो का स्थान विशेष महत्वपूर्वा है। ज्ञान के परमोत्कर्ष स्वरूप ईन वेदग्रंथो के संरक्षवा हेतु शिक्षा , कल्प, व्याकरवा, निरूक्त, छंद एवं ज्योतिष-ईन षड् वेदांगो की रचना हुई। ईन सभी वेदांगो में से वैदिक शब्दकोष 'निघंटु' के शब्दों की व्युत्पति हेतू रचित निरूक्त में वैदिक मंत्र-षब्दों की व्युत्पति की चर्चा के साथ ही, तत्कालीन भाषा, इतिहास, अध्यात्म, शिक्षा दि विषयों पर भी विस्तृत चर्चा की गई है, जिसमें शिक्षा संबधित चर्चा के सभी पहलू, जैसे कि- ज्ञान, गुरू, शिष्य , अनुशासन आदि की चर्चा भी मिलती है, जिससे तत्कालीन शिक्षा प्रणाली का स्वरूप स्पष्ट होता है। इस प्रकार निरूक्त व्युत्पति-विषयक ग्रंथ होने के साथ-साथ शिक्षा का भी मार्गदर्षक ग्रंथ है। निरूक्त में निर्दिष्ट शिक्षा विषयक यह चर्चा साप्रत समय में भी सर्वथा प्रस्तुत एवं अनुंकरणीय है।

चाबी रूप शब्दः

ज्ञान परंपरा- बिना किसी परिवर्तन के एक पीढी से दूसरी पीढी तक ज्ञान का संचरवा निघंटु- वैदिक मंत्र-शब्द का शब्दकोष निरूक्त- षड् वेदांग मे से एक वेदांग, जिससे निघंटु के शब्दों की व्युत्पति की गई है, शिक्षा - शिष्य के सर्वांगी विकास हेतू गुरू - शिष्य द्वारा किया गया संवाद

प्रस्तावनाः

ज्ञान के प्राचीनतम भांडागार रूप वेद की पुरूष रूप में कल्पना करते हुए महर्षि पाविनि ने कहा है कि, सांगोपांग वेदाध्ययन के द्वारा ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति संभव है। पाविनीय शिक्षा (41-42) में ईन षड् वेदांगों के कार्यानुरूप स्थानों का

वेद पुरूष के सुंदर रूपक के आश्रय से किया गया निरूपवा इस प्रकार है-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्ती कल्पोऽथ पठ्याते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्त श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षा घ्रावां तु वेदस्य मुख व्याकरवा स्मृतम् ।
तस्मात्साद्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।

अर्थात्, छन्द वेद भगवान के चरवा, कल्प हाथ, ज्योतिष ऑखे, निरूक्त कर्वा, शिक्षा नासिका एवं व्याकरवा मुख है। यहॉ भारपूर्वक कहा गया है कि, ईन छ वेदांगों सहित वेद का अध्ययन करने पर ही मौक्ष की प्राप्ति होती है। ईन षड् वेदांगों में वैदिक शब्दकोष निघन्टु के पदों के व्याख्यान स्वरूप, प्राचीनतम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्वा शब्दार्थतत्व विषयक निरूक्त ग्रंथ की रचना सांख्य प्रवर्तक कपिल मुनि के प्रपीज पंचषिख के पुत्र, यस्क शिष्य यास्क ने की है। यास्क ने निरूक्त (1/5) में ग्रंथ का प्रयोजन बताया है कि, 'साक्षात्कृतधर्मा' ऋषिओं ने परवर्ती 'असाक्षात्कृतधर्मा' ऋषियों को वेदमंत्री के रहस्य का सम्यंक ज्ञान देने के लिये षड् वंदांगो की रचना की है।

चतुर्दशाध्यायी इस निरूक्त ग्रंथ में प्रधानत अज्ञात या अल्पज्ञात धातुवाले मंत्र-शब्दों की व्युत्पति की गई है, किन्तु प्रसंगोपात उसमें भाषा, साहित्य, इतिहास, अध्यात्म, छन्द एवं व्याकरवा जैसे विषयों के साथ-साथ प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के भी महत्वपूर्वा निर्देश मिलते है, जो आधुनिक माहितीप्रधान और भौतिक विकास पर केन्द्रित शिक्षा प्रणाली को दिषानिर्देश देने मे सर्वथा सक्षम है।

शिक्षा का महत्व :

निरूक्त में अर्थ सहित ज्ञान की भूरिभूरि प्रशंसा की गई है। यास्क निरूक्त (1/2) में उत्कृष्ट ज्ञान का स्वरूप समझाते हुए कहते है - 'किलेति विद्याप्रकर्षे' अर्थात, ज्ञान की उत्कृष्टता तब सिध्द होती है, जब व्यक्ति तथ्य की गम्भीरता तक पहुँचकर निश्चयपूर्वक कहता है कि, जैसा मै कह रहा हू , वह तथ्य एवं किल ऐसा ही है। ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान के आधार पर ही तत्कालीन समाज में विद्वानों को विशेष उपाधियों से संबोधित किया जाता था। इस बारे में निरूक्त (1/1) में कहा है, 'पारोवर्य वित्सु स खलु वेदितृषु भूयोविद्य प्रशस्यो भवति।' अर्थात, आचार्य-परंपरा से वेदोभ्यास करने वाले विद्वानों में मंत्रो को अर्थसहित जानने वाला

विद्वान 'भूयोविद्यः' और 'भूयोविः' से भी अधिक विद्यावान 'सर्वविद्यब्रह्मा' प्रशंसनीय बन जाता है। यास्क (1/6) ने 'अथापि ज्ञानप्रशंसा भवति, अज्ञाननिन्दा च।' में भी स्पष्ट किया है कि, जो व्यक्ति अर्थ सहित निरूक्त का अध्ययन करके वेदार्थज्ञान में निपुवा हो जाता है, उसके ज्ञान की समाज में प्रषंसा होती है, तथा अज्ञानी की निदा होती है। ज्ञान प्रशंसा करते हुए यास्क निरूक्त (1/6) में श्रुति के मंत्रो से एक रमणीय उपमा का आधार लेकर कहते है कि,- 'जायेव पत्ये कामयमाना सुवासा ऋतुकालेषु' अर्थात, जिस प्रकार ऋतुकाल में स्वच्छ वस्त्रों वाली एवं पतिकामा पत्नी पति के समक्ष अपने सम्पूर्वा देह को प्रकट कर देती है, उसी प्रकार मंत्रज्ञ विद्वान के समक्ष वेदवाणी अपना अर्थ रूपी शरीर प्रकट कर देती है। ईतना ही नहीं, वेदवावी को सम्पूर्वा जानने वाला ऋषि देवलोक में देवों के साथ रमणीय स्थान प्राप्त करता है। ईसके विपरित, वेदमंत्रों को अर्थरहित कंठस्थ करके, सच्ची वेदवाणी के आभास के साथ घूमने वाला, माया द्वारा रची गई जूठी धेनु के साथ घूमता है, एसे अज्ञानी को वाणी से अर्थ रूपी पुष्प, यज्ञ तथा फल (ज्ञान) प्राप्त नही होता है। (ऋ. 10/71/5)

अपने इस मत के समर्थन में यास्क निरूक्त (1/6) में भारवाही गर्दभ (स्थाणूंरयं भारहारः) का उदाहरवा प्रस्तुत करके कहते है कि, जो व्यक्ति वेदमंत्रो का सिर्फ अध्ययन (षुकपाठ) करता है किन्तु, उनके अर्थ को नही जानता है, वह चन्दनकाष्ठ को अपनी पीठ वहन करने वाले, अपितु चन्दन की सुगंध का लाभ नही ले शकने वाले गर्दभ के समान है। यास्क निरूक्त में 'अनग्रांविव शुष्केन्धो' (1/6) उदाहरवा दे कर कहते है कि, जिस प्रकार काष्ठ शुष्क होने पर भी बिना अग्नि के प्रज्वलित नही होता, उसी प्रकार वेदमंत्रों के अर्थ को बिना जाने उसका अध्ययन करने वाले अध्येता को कोई लाभ नही होता है।

आचार्यः समूची भारतीय शिक्षा प्रणाली के तीन महत्वपूर्वा स्तम्भ विद्या, विद्यादाता आचार्य एवं विद्यार्थी है। ईनमें शिखरस्थान पर आसन्न आचार्य के बारे में निरूक्त जैसे प्राचीन ग्रंथ में की गई चर्चा आचार्य के स्थान-मान की द्योतक है। यास्क निरूक्त (1/4) में 'आचार्य' शब्द की व्युत्पति में उनके तीन महत्वपूर्वा कार्यों का निर्देश करते है,- 'आचार्य आचारं ग्राहयति, आचिनोत्यर्थान्, आचिनोति बुध्दिमिति वा।' अर्थात्, आचार्य शिष्य की बुध्दि का परीक्षवा करता है। निरूक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य अनुसार, यास्क के इन निर्वचनों से ज्ञात होता है

कि, आचार्य स्वयं सदाचरवा करके षिष्यों से भी सदाचरवा करवाता था, एवं स्वयं अध्ययन कार्य में तत्पर रहकर नये-नये अर्थो को समझकर अपनी बुध्दि में इकट्ठा करता था, जिससे समय पर विद्यार्थियों की बुध्दि तथा अध्यापित ज्ञान का परीक्षवा कर शके। आचार्य की इस व्याख्या का अनुसंधान करते हुए, पाविनि (पा.सू.4/4/98) ने 'तंत्र साधुः' सूत्र द्वारा, आचार्य की 'आचारे साधुः स आचार्यः' व्युत्पति दी है। अमरकोष (2/7/7) ने भी 'आचारणीय सेव्यः इति आचार्यः' कह कर मानो यास्क के मत पर मुहर लगा दी है।

यास्क निरूक्त (1/1) में 'जानपदीषु विद्यातः पुरूषविषेषो भवति। पारोवर्यवित्सु स खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रषस्यो भवति।' कह कर समाज में पारावार्य विद्या में उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वान को 'भूयोविद्यः' और'भूयोविद्यः' से भी उच्च ज्ञान वाले विद्वान को 'सर्वविद्यब्रह्मा' की सन्मानित उपाधि से किये जाने का निर्देश करते है। इतना ही नही, यास्क (1/1) शिष्य के जीवन में आचार्य की महत्ता दर्षाते हुए, आचार्य को मातापिता के पूजनीय स्थान पर प्रतिष्ठित करते है,- 'य आतृवाति अवितथेन कवो, अदुःखं कुर्वन्नमृतं संप्रयछन्। तं मन्येत् पितरं मातरं च तस्मै न द्रुहोत् कतमच्चनाह।' अर्थात, दुःख को दूर करने वाला तथा अमृत प्रदान करने वाला जो गुरू सत्य से, शिष्य के दोनों कानों को खोल देता है, ऐसे गुरू को माता और पिता के समान मानना चाहिए, तथा उनका कदापि द्रोह नही करना चाहिए।

शिष्यः प्राचीनकाल में 'अधिकारी' शिष्य को ही विद्याप्राप्ति का 'अधिकार' था। इसलिए निरूक्त (2/1) में भी यास्क अधिकारी और अनधिकारी दो प्रकार के शिष्यों की विस्तृत चर्चा करते है, जो किसी भी शास्त्र पढने के लिए उत्सुक शिष्य पर लागू होता है।

-अनधिकारी शिष्यः यास्क ने प्रथम 'अनधिकारी शिष्य ' की चर्चा करते हुए कहा है- 'ना वैयाकरणाय। नानुपरान्नाय। अनिदंविदे वा।' अर्थात्, जो वैयाकरण न हो, जो शिष्य भाव से (गुरू समीप) आया न हो, तथा जो निरूक्त को जानने वाला न हो, वह अधिकारी शिष्य नही है। यहॉ टीकाकार दुर्गाचार्य का स्पष्ट मत है कि, यदि कोई वैयाकरण हो अपितु, विनीत भाव से विधिवत् समित्पाविा होकर गुरू से पास

नही आता है, या कोई जड वैयाकरण हो, जो निरूक्त में (देवतादि विषयक) ज्ञान जानने मे असमर्थ हो, वह अनधिकारी शिष्य है। दुर्गाचार्य ने मंत्र मे प्रयुक्त 'इदंविद्' शब्द का अर्थ 'आत्मविद्' करते हुए कहा है कि, आत्मज्ञान से जिसके पाप नष्ट नही हुए है, ऐसे व्यक्ति को निरूक्त नही पढाना चाहिए। यास्क विद्यासूक्त (2/1) 'विद्या ह वै ब्राह्मवाम् आजगाम, गोपाय माम्, शेवधिष्टे अहमस्मि, असूयकाय, अनृजवे, अयताय न् मा ब्रूयाः वीर्यवती तथा स्याम्' में शब्दांतर से अनधिकारी शिष्य का ही वर्वान करते है। जिसमे, विद्या की देवी स्वयं गुरू के पास आकर ईर्ष्यालु, कपटी, अपवित्र व असयमी शिष्य को विद्या का दान न देने की बिनंती करती है। जिससे वह अपने अभीष्ट रूप में रहकर परिपुष्ट बनी रहे।

-अधिकारी शिष्यः अध्ययन के अनधिकारी शिष्य की चर्चा के बाद यास्क निरूक्त (2/1) में अधिकारी शिष्य के गुवा कहते है,- 'उपसन्नाय तु निब्रुयात्। यो अलं विज्ञातु स्यात्। मेधाविने । तपस्विने वा।' अर्थात्, जो शिष्य भाव से (समित्पाविा होकर) गुरू के समीप आया हो, निरूक्त जानने में समर्थ हो, मेधावी हो और तपस्वी हो, वही निरूक्त शास्त्र पढने का अधिकारी है। शिष्य के यह गुवा किसी भी शास्त्र पढने के लिए उत्सुक शिष्य के लिए अनिवार्य है।

अनुशासनः निरूक्त में अधिकारी और अनधिकारी शिष्यों की चर्चा मे ही शिक्षा के अनुशासन के नियम निहित है। निरूक्त (2/1) में शिष्य के गुरूकुलनिवास के अनुशासक का स्पष्ट सूचन करते हुए कहा गया है कि, 'य आतृवात्यवितथेन कर्णावदुःखं कुर्वन्नमृत सम्प्रयच्छन्। तं मन्येत् पितर मातरं च तस्मै न् द्रुह्येत् कतमच्चनाह।।' अर्थात्, गुरू को माता और पिता के समान मानकर उनका आदर करना चाहिये। उनका कभी भी द्रोह नही करना चाहिये। साथ ही में 'ना वैयाकरणाय। नानुपरान्नाय। अनिदंविदे वा।' कह कर जो वैयाकरण न हो, शिष्य भाव से (गुरू के पास) आया न हो तथा निरूक्त जानने वाला न हो, उसे अनधिकारी या अनुशासन हीन शिष्य कहा है। यास्क इस चर्चा में अनुशासन पर भार देते हुए कहते है कि,-

'आध्यापिता ये गुंरू नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा। यथैव न ते गुरो र्भोजनीयास्तथैव तान्न भूनक्ति श्रुतं तत्।' अर्थात्, जिनको अध्यापन करवाया है, वे

शिष्य भाषा, मन, और कर्म से (अधिकारी) गुरू का आदर न करे, तो गुरू वैसे शिष्य के प्रति ध्यान नही देते, वैसे ही विद्या भी उनके प्रति ध्यान नही देती।

इस प्रकार यास्क अनुशासन को विद्याप्राप्ति मं अति आवश्यक मानते है, जिस की सबसे ज्यादा आवश्यकता सांप्रत शिक्षा प्रणाली में है, जो केवल भौतिक विकास को केन्द्रित कर, नैतिक विकास को नजर अंदाज करती है।

पाठ्याविषयः उपनिषदोतरकालीन ग्रंथ होने के कारवा उपनिषत्कालीन विद्याओं का निरूक्त में पर्याप्त वर्णन मिलता है। निरूक्त (1/5) सूत्र 'जानपदीषु विद्यातः पुरूषविषेषो भवति। पारोवर्यवित्सु स खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रषस्यो भवति।'- में जानपदी विद्या तथा पासवार्य विद्याओं की चर्चा है, जिससे जानपदी विद्या में आजीविका से संबंध्द वास्तुविधा, धनुर्विद्या, न्यृत्य, संुगीतादि जनपद में प्रचलित हस्तकौषलप्रधान विद्याओं का समावेष किया गया है, तथा पारावर्य विद्या में गुरू-शिष्य परंपरा से प्राप्त विद्या का समावेष किया गया है। इस संदर्भ में यास्क ने निरूक्त (1/6) में 'वेदं च वेदाद्गानि च'- शब्दों का स्पष्ट प्रयोग कर, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद और शिक्षा, कल्प, व्याकरवा, निरूक्त, छंद और ज्योतिष वेदांगो का सूचन किया है। ईनके साथ ब्राह्मवा ग्रंथ, तर्कविद्या आदि विषयों का भी निरूक्त में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। दुर्गाचार्य ईस संदर्भ में लिखते है- ''स पुनरेष सर्वविद्यः सर्वविज्ञानस्तथाविधौ ह्यसावधिकारी त्रयी विद्यासंयुक्तौ येना सौ सर्वमेव वेदितुमर्हति।'' भाषा के संदर्भ में निरूक्त (2/1) में 'षवतिर्गति कर्मा, कम्बोजेषु एवं भाष्यते।' कह कर कम्बोज, आर्यदेष आदि प्रदेषों की लौकिक भाषाओं के ज्ञान से वेदमंत्रो का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का भी निर्देश दिया हैं।

निरूक्त (14) के 'अथाध्यातमन्' सूत्र में 'अब आध्यात्मिक व्याख्या दी जा रही है'- में सर्वश्रेष्ठ विद्या 'अध्यात्मविद्या' का निर्देश है, तथा निरूक्त (2/1) के प्रसिध्द विद्यासूक्त के मन्त्रांष 'षेवधिष्टेऽहमस्मि'- 'मै (विद्या) तेरा निधि हॅू।'- में प्रयुक्त 'षेवधि' शब्द के अर्थघटन से 'ब्रह्मविद्या' का निर्देश प्राप्त है ('षेव' इति सुखनाम्, सुखनिधानमित्यर्थः ब्रह्मलोको हि निधिः। सुखानां कृत्स्नस्य जगतो यज्ञद्वारेवा अंतः इदमुक्तं निधिः शेवधिरिति') अर्थात्, ब्रह्मलोक प्राप्त करनेवाली

ब्रह्मविद्या 'षेवधि' है।

अध्यापन पध्दतिः निरूक्त मूलतः शिक्षा विषयक ग्रंथ नही है, अपितु यास्क ग्रंथ में चर्चा-विषय के आधार पर विभिन्न प्रकार से अपने विचार रखते है। इससे तत्कालीन विभिन्न अध्यापन पध्दतियॉ तथा उनके स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है। प्राचीनकाल से अध्यापिपर्यंत ये पध्दतियॉ शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग बन चुकी है।

-पाठ पध्दतिः निरूक्त (2/1) में 'इवेति भाषायाञ्च अन्वध्यायञ्च।' आयार्च ऋषियों द्वारा मंत्रो का उच्चारवा करने के पश्चात् शिष्यों द्वारा मंत्रो का उच्चारवा किये जाने की चर्चा मिलती है। शास्त्रज्ञान की यह पध्दति गुरूकुलप्रणाली में बहुत प्रचलित थी।

-व्याख्यान पध्दतिः निरूक्त के प्रारम्भे में 'व्याख्यातव्यः' शब्द से व्याख्यान का निर्देश है। दुर्गाचार्य 'व्याख्यान' के बारे में लिखते है,- मंत्रो का पदच्छेद्, पदों का अर्थदर्षन, समासादि का विग्रह, पदों का परस्पर अन्वयदर्षन एवं पूर्व-अपर वाक्यों की संगति बिठाना- ईन लक्षणो से युक्त जो कथन है, उसे व्याख्यान कहते है। निरूक्त मे यह व्याख्यान पध्दति बहुलप्रयुक्त है।

-प्रश्नोत्तर पध्दतिः- गुरू-शिष्य संवाद परंपरा मे जिज्ञासा और जिज्ञासा-समाधान को केन्द्रित करनेवाली प्रश्नोत्तर पध्दति प्राचीन काल से अध्यापिपर्यन्त शिक्षा प्रणाली में प्रमुख स्थान पर आरूढ है। यास्क भी निरूक्त में प्रसंगोपात 'कस्मात्' प्रश्न पूछकर एक ही शब्द के एक या एकाधिक निर्वचन देकर इसका उचित प्रयोग करत है। यथाहिरवयम् कस्मात् (निघंटु1/2/5) पूछकर इस शब्द के पॉच निर्वचन देते है।

-परिविवाद पध्दतिः यास्क निरूक्त में कई स्थानों पर स्वमत हेतु खंडन-मंडन का भी प्रयोग करते है, जिस में पूर्वपक्षी के मत की स्थापना के बाद प्रतिपक्षी द्वारा उनके मत का युक्तिपुरःसर खंडन कर, प्रतिपक्ष के मत की स्थापना की जाती है। जैसे कि, गार्य तथा अन्य वैयाकरणों के मत की स्थापना के बाद यास्क गागर्यमतखंडन (1/4-7) कर शाक्टायन तथा स्वमत की स्थापना करते है। इसी तरह यास्क निपातों की चर्चा (1/3) मे तीन विभिन्न मत - 'त्व' पद नाम, सर्वनाम या अर्धनाम है?' रखकर अंत में सब मतों का समाधान प्रस्तुत करते है।

इस तरह यास्क निरूक्त मे चर्चा-विषय के अनुरूप पध्दति का प्रयोग कर शिक्षा विभिन्न अध्यापन पध्दतियों का मानो निदर्शन देते है।

समापनः वैदिक वाद्‌ग्मय में अति गहन एवं क्लिष्ट शब्दो का यथार्थ रूप से समझाने हेतु रचित इस निरूक्त ग्रंथ का प्रमुख उद्देष्य ही वेदादि ग्रन्थो का सम्यक् अध्ययन-अध्यापन है। इसलिए निरूक्त में शास्त्रज्ञान के सभी पहलूओं की विस्तृत चर्चा मिलती है, और यही चर्चा शिक्षा के विभिन्न पहलूओं पर भी लागू होती है। ईस प्रकार निरूक्त केवल व्युत्पत्ति विषयक ग्रंथ न बन कर शिक्षा का भी मार्गदर्षक ग्रंथ बन गया है। निरूक्त में निर्दिष्ट शिक्षा विषयक यह विचार आज की शिक्षा प्रणाली में भी सर्वथा प्रस्तुत, विचारणीय एवं अनुकरणीय है।

संदर्भ सूचिः

1. शास्त्री हरगोविंद। (1970)। 'अमरकोष'। चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस। वारावासी। प्रथत संस्करवा।
2. त्रिवारी हरीनारायवा। आचार्य रामप्रसाद। (2020) (सम्पादन)। 'शिक्षा संग्रह'। चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस। वारावासी।
3. जमुनापाठक। (2015)। (व्याख्याकार एवं संपादक)। 'निरूक्तम्'। चौखम्बा कृष्वादास अकादमी, वारावासी। द्वितीय संस्करवा।
4. शास्त्री षिवनारायवा। (2021)। 'निरूक्त-मिमांसा। परिमल पब्लिकेषन्स। दिल्ली।
5. जाडेजा एवं ठाकोर (1998) 'वि' मासिक 'सस्कृत शास्त्रांमा षिक्षवा विभावना' विषयक का अद्‌क, 1-2 चारूतर विध्यामवडल। वल्लभ विध्यानगर।

* * *